हरि सिंह गौंड

बनाम

मध्यप्रदेश राज्य

(दाण्डिक अपील संख्या 321/2007)

अगस्त 29, 2008

[डॉ. अरिजित पसायत व डॉ. मुकुन्दकम शर्मा, न्यायमूर्ति]

दण्ड संहिता, 1860:

धाराएं 84 व 302 - हत्या के मामले में अभियुक्त अन्र्तगत धारा 84 के अंतर्गत सुरक्षा का दावा कर रहा है - अभिनिर्धारित - पागलपन को सिद्ध करने का भार अभियुक्त पर है तथा यह भार अभियोजन द्वारा आरोपों को सिद्ध करने के भार जैसा नहीं है - यह तय करने के लिये कि क्या अभियुक्त को धारा 84 का लाभ दिया जाये अथवा नहीं, अपराध कारित किये जाने का समय महत्वपूर्ण है - जहां पर अनुसंधान के दौरान अभियुक्त के पागलपन का पूर्व का इतिहास सामने आता है, यह अन्वेषणकर्ता का कर्तव्य है कि वह अभियुक्त का मेडिकल परीक्षण कराये तथा साक्ष्य को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करे। यदि यह नहीं किया जाता तो उससे अभियोजन मामले में गंभीर कमजोरी उत्पन्न होती है तथा संदेह का लाभ अभियुक्त को दिया जाना चाहिए - तथ्यों पर विचारण न्यायालय एवं उच्च न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है कि धारा 84 लागू नहीं होती है - साक्ष्य अधिनियम, 1872- धारा 105।

धारा 302 एवं 201 भा.द.सं. के अंतर्गत अपीलार्थी का अभियोजन इन आरोपों पर किया गया है कि दिनांक 25-26 फरवरी 1995 की दरम्यानी रात्रि में पीडब्ल्यू 1 का पिता, ससुर एवं अभियुक्त, जो पीडब्ल्यू 1 का दामाद था, पीडब्ल्यू 1 के घर के कमरे में सो रहे थे, रात्रि करीब 3-3:30 बजे पीडब्ल्यू 1 ने अभियुक्त के चिल्लाने की आवाज सुनी, जो दरवाजे पर धक्का लगा रहा था, तब अभियुक्त उसकी ओर दौडा तथा उसके साथ लाठी से मारपीट की, पीडब्ल्यू 1 घर से बाहर की ओर दौडा, उसने यह देखकर कि घर में आग लगी है, गांव के कुछ लोगों को बुलाया, जिन्होंने अभियुक्त को पकड लिया। उन्होंने देखा कि पीडब्ल्यू 1 का ससुर कमरे में मृत पडा हुआ है तथा उसका शरीर झुलसा हुआ है। पीडब्ल्यू 1 के पिता ने बताया कि अभियुक्त ने उसे लात व थप्पडों से मारपीट की है तथा मृतक के साथ लाठियों से मारपीट कर उसकी हत्या कारित करके अनाज में आग लगा दी, जिससे घर में आग लग गई तथा मृतक भी झुलस गया। शव परीक्षण रिपोर्ट से यह प्रकट हुआ कि मृतक पूरा जल चुका था तथा उसके शरीर पर सभी चोटें मृत्यु पूर्व की थी। विचारण न्यायालय ने अभियुक्त को धारा 302 भा.द.सं. के अपराध में दोषसिद्ध करते हुये यह अभिनिर्धारित किया कि धारा 84 भा.द.सं. इस मामले में लागू नहीं होती। उच्च न्यायालय द्वारा दोषसिद्धी की पुष्टि की गई।

अभियुक्त द्वारा प्रस्तुत हस्तगत अपील में अपीलार्थी की ओर से यह तर्क दिया गया है कि धारा 84 भारतीय दण्ड संहिता के अंतर्गत अभियुक्त

द्वारा ली गई प्रतिरक्षा को विचारण न्यायालय एवं उच्च न्यायालय द्वारा अस्वीकार करना न्यायसंगत नहीं है।

न्यायालय द्वारा अपील को खारिज करते हुये यह अभिनिर्धारित किया गया है कि:-

1.1 धारा 84 भा.द.सं. कथित मानसिक चित्त-विकृतता के मामलों में उत्तरदायित्व के विधिक परीक्षण संबंधि उपबंध करती है। भारतीय दण्ड संहिता के अंतर्गत "मानसिक चित्त-विकृतता" को परिभाषित नहीं किया गया है। यद्यपि, न्यायालयों द्वारा इसे पागलपन के समान ही माना जाता है। विधिक चित्त-विकृतता एवं मेडिकल चित्त- विकृतता में अंतर होता है। न्यायालयों को विधिक चित्त-विकृतता को ही देखना होता है, ना कि चिकित्सकीय चित्त-विकृतता को। धारा 84 भा.द.सं. के अंतर्गत केवल मानसिक व असामान्य व्यवहार अथवा आंशिक भ्रम, अप्रतिरोध्य आवेग अथवा मनोरोगी का बाध्यकारी व्यवहार संरक्षित नहीं है। यह मापदंड प्रयोग में लाया जाना चाहिए कि क्या युक्तियुक्त व्यक्ति द्वारा अपनाये जाने वाले साधारण मापदंडों के अनुसार कृत्य सही था अथवा गलत। [पैरा 5, 9 व 10]

एम नोटनस का प्रकरण (1843) 4 एसटी. टीआर. (एनएस) 847 - संदर्भित।

1.2 साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 105 के अनुसार अपनी चित्त विकृतता को सिद्ध करने का भार अभियुक्त पर है, तथा यह भार अभियोजन

के ऊपर आरोप सिद्ध करने के भार के समान नहीं है। अभियुक्त पर सबूत का यह भार सिविल कार्यवाही में वादी अथवा प्रतिवादी पर जो सबूत का भार होता है। उससे अधिक नहीं है। चित्त-विकृत्तता से जुडे मामलों से निपटने में, उन मामलों के बीच अंतर किया जाना चाहिए, जिनमें पागलपन कमोबेश साबित हो चूका है तथा प्रश्न मात्र गैर-जिम्मेदारी की मात्रा का है और ऐसे मामले जिनमें चित्त- विकृत्तता किसी ऐसे व्यक्ति, जो हर प्रकार से समझदार प्रतीत हो रहा है, के संबंध में सिद्ध करने का प्रयास किया जाता है। [पैरा 5] [954,जी- एच; 955,ए-बी]

दहयाभाई बनाम गुजरात राज्य 1964 (7) एससीआर 361=एआईआर 1964 एससी 1563 - पर भरोसा किया।

1.3 जहां पर अन्वेषण के दौरान चित्त-विकृत्तता का कोई पूर्व इतिहास सामने आता है तो अन्वेषणकर्ता का यह दायित्व है कि वह अभियुक्त का मेडिकल परीक्षण कराये तथा उस साक्ष्य को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करे एवं यदि ऐसा नहीं किया जाता तो यह अभियोजन मामले में एक गंभीर दुर्बलता को जन्म देता है, तथा इस संदेह का लाभ अभियुक्त प्राप्त करता है। यद्यपि, अपराध घटित होने के ठीक पूर्व एवं अपराध घटित होने के समय या उसके तुरंत पश्चात् अभियुक्त के आचरण, मानसिक दशा एवं अन्य सुसंगत कारकों के संबंध में साक्ष्य प्रस्तुत करके सबूत का भार उन्मोचित किया जाना चाहिए। [पैरा 6] [955,एच; 956,ए-बी]

आर्चबोल्ड की आपराधिक अभिवचन, साक्ष्य और अभ्यास, 35 वां संस्करण। पृ. 31-32; अपराध और दुराचार पर रसेल, 12 वां संस्करण। वॉल्यूम, पी. 103 और 105 -संदर्भित

1.4 भारतीय दण्ड संहिता की धारा 84 यह उपबंध करती है कि इस धारा का लाभ उस दशा में ही उपलब्ध होगा, यदि यह प्रमाणित कर दिया जाता है कि कृत्य करते समय अभियुक्त की निर्णय करने की क्षमता मानसिक बीमारी के कारण थी कि, जो वह कर रहा था वह उसकी प्रकृति एवं उसके गुण के बारे में नहीं जानता था, अथवा यह नहीं जानता था कि वह जो कर रहा है वह या तो दोषपूर्ण है अथवा विधि विरूद्ध है। इस धारा का लाभ दिया जाये अथवा नहीं यह सुनिश्चित करने के लिये महत्वपूर्ण समय वह है जिस समय अपराध किया जाता है। इस निष्कर्ष पर पहूंचने हेतु सुसंगत परिस्थितियां विचार में ली जाती हैं, केवल अपराध की प्रकृति के आधार पर दिये गये तर्कों से चित्त-विकृतता की प्रतिरक्षा को स्वीकार करना खतरनाक है। [पैरा 9] [956-एच; 957, ए-सी]

शेराल वली मोहम्मद बनाम महाराष्ट्र राज्य 1972 सीआर. एलजे 1523 (एससी) - संदर्भित।

स्टीफन द्वारा "इंग्लैंड के आपराधिक कानून का इतिहास "भाग द्वितीय, पृ. 166- संदर्भित

2. मामले के तथ्यों के दृष्टिगत विचारण न्यायालय एवं उच्च न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है कि धारा 84 भा.द.स. लागू नहीं होती है। [पैरा 11] [958,एफ़]

संदर्भित न्यायिक दृष्टांत

1964 (7) एससीआर 361	**भरोसा किया**	**पैरा 5**
1972 सीआर.एलजे 1523 (एससी)	**संदर्भित**	**पैरा 9**

दाण्डिक अपीलीय क्षेत्राधिकार - दाण्डिक अपील संख्या 321/2007।

मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय जबलपुर द्वारा दाण्डिक अपील संख्या 410/1996 में पारित अंतिम निर्णय व आदेश दिनांक 17-01-2005 के विरूद्ध।

वाई.एस. दलाल व डॉ. सुशील बलवाडा अपीलार्थी की ओर से।

विभा दत्ता मखीजा प्रत्यर्थी की ओर से।

निर्णय **न्यायमूर्ति डॉ. अरिजीत पसायत** द्वारा दिया गया है।

1. इस अपील में मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय, जबलपुर की खंडपीठ के उस निर्णय को चुनौती दी गई है, जिसमें अपीलार्थी की दोषसिद्धी धारा 302 एवं 201 भा.द.सं. के अंतर्गत सेशन न्यायाधीश मंडला द्वारा सेशन प्रकरण संख्या 66/1995 में की जाकर क्रमशः आजीवन कारावास एवं तीन वर्ष के कारावास से दण्डित किया गया है।

2. अभियोजन पक्ष द्वारा विचारण के दौरान जो तथ्य प्रस्तुत किये गये हैं वे इस प्रकार हैं कि

हरिलाल गोंड (बाद में मृतक के रूप में संदर्भित) अभियुक्त का ममेरा दादा ससुर था। घटना की रात्रि में अभियुक्त, मृतक एवं उसका समधी मोतीलाल एक ही घर में सो रहे थे।

श्यामलाल (पीडब्ल्यू-1), मृतक का दामाद अपने दामाद आरोपी हरि सिंह को 23.2.1995 को इलाज के लिए सिंगणपुरी से मोहदा लाया। 25.2.1995 को शाम को श्यामलाल के पिता मोतीलाल (पीडब्ल्यू-2) और उनके समधी यानी मृतक और दामाद यानी आरोपी हरि सिंह खाना खाने के बाद एक ही कमरे में सो रहे थे। श्यामलाल अकेला अपने कमरे में सो रहा था। करीब तीन-साढ़े तीन बजे श्यामलाल अपने दरवाजे को धक्का दे रहे दामाद की चिल्लाने की आवाज सुनकर उठा। तभी आरोपी उसे पीटने के लिए दौड़ा और हाथ में ली हुई लाठी से श्यामलाल की पिटाई कर दी। श्यामलाल भागकर बलदान के घर चला गया। कुछ देर बाद उसने देखा कि उसका घर जल रहा था। फिर वह अपने घर की ओर दौड़ता हुआ आया और यह बात गांव वालों को बताई। जब वह ग्रामीणों के साथ उसके घर गया तो मुल्लू सिंह, चमरू सिंह आदि ग्रामीणों ने आरोपी हरि सिंह को पकड़ लिया और देखा कि जिस कमरे में श्यामलाल का ससुर हरिलाल और उसके ससुर सो रहे थे, वहां आग लगी हुई थी तथा उसका ससुर झुलसा हुआ था तथा उसकी मृत्यु हो चुकी थी। श्यामलाल के पिता मोतीलाल ने उन्हें बताया कि हरि सिंह ने उसके गाल पर थप्पड़ मारा था और उसकी पीठ पर लात भी मारी थी और लाठी और त्रिशूल लेकर उसके पीछे दौड़ा,

फिर वह भी भाग गया। फिर अभियुक्त ने मृतक हरिलाल को डंडे से पीटना शुरू कर दिया और अभियुक्त ने हरिलाल पर कई वार किए जिससे हरिलाल की मौत हो गई तभी अभियुक्त ने उस कमरे में पड़े कुछ अनाज में आग लगा दी, जिससे न सिर्फ घर में आग लग गई बल्कि हरिलाल भी झुलस गया। घटना की सूचना श्याम लाल ने सुबह 9 बजे थाना बीजाडांडी की पुलिस चौकी मनेरी को लिखित रूप में दी और रिपोर्ट एक्स. पी-1 है। हरिलाल का पोस्टमार्टम करने पर पाया गया कि उसका पूरा शरीर झुलस चूका था, उसके शरीर पर कई चोटें थीं और सिर में फ्रैक्चर था और सभी चोटें मृत्यु पूर्व की थीं।

अन्वेषण के पश्चात् आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया। अभियुक्त द्वारा निर्दोष होने का अभिवाक् किये जाने पर उसका विचारण किया गया।

विचारण न्यायालय द्वारा प्रत्यक्षदर्शी साक्षी मोतीलाल पीडब्ल्यू-2 की साक्ष्य पर भरोसा किया गया, जबकि काली बाई पीडब्ल्यू-4 ने अपनी साक्ष्य में अभियुक्त के असामान्य व्यवहार के बारे में प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के कथनों की पुष्टी की।

विचारण न्यायालय द्वारा साक्ष्य को ठोस माना गया है तथा तदनुसार दोषसिद्ध कर उपरोक्तानुसार दण्डित किया गया। विचारण न्यायालय द्वारा भा.द.सं. की धारा 84 के अंतर्गत किये गये अभिवाक् को लागू होना नहीं मानते हुये अस्वीकार कर दिया गया। विचारण न्यायालय के समक्ष अपील

में चित्त विकृत्तता एवं भा.द.सं. की धारा 84 के अंतर्गत प्रतिरक्षा के बिंदू को उठाया गया।

दूसरी ओर अभियोजन द्वारा यह प्रार्थना की गई है कि धारा 84 इस मामले में ना तो सुसंगत है ना ही लागू होती है। उच्च न्यायालय द्वारा राज्य के पक्ष को स्वीकार किया गया है एवं तदनुसार अपील को निरस्त कर दिया गया।

3. वर्तमान अपील में यह प्रार्थना की गई है कि प्रत्यक्षदर्शी साक्षी पीडब्ल्यू-2 व पीडब्ल्यू-4 के कथनों में भी अभियुक्त के असामान्य व्यवहार का कथन किया गया है। अतः अधिनस्थ न्यायालय द्वारा धारा 84 भारतीय दण्ड संहिता के अंतर्गत प्रतिरक्षा के अभिवाक् को अस्वीकार करना न्यायसम्मत नहीं था।

4. दूसरी ओर प्रत्यर्थी के विद्वान अभिभाषक द्वारा विचारण न्यायालय एवं उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णयों का समर्थन किया गया है।

5. धारा 84 भा.द.सं. कथित मानसिक चित्त-विकृत्तता के मामले में उत्तरदायित्व के विधिक परीक्षण संबंधी उपबंध करती है। भा.द.सं. के अंतर्गत मानसिक चित्त-विकृत्तता को परिभाषित नहीं किया गया है यद्यपि न्यायालय द्वारा इसे "पागलपन" के समान ही माना जाता है परंतु "पागलपन" की कोई सटीक परिभाषा नहीं है। इस शब्द का उपयोग मानसिक विकार की विभिन्न श्रेणियों के उल्लेख के रूप में किया जाता है। अतः प्रत्येक व्यक्ति जो मानसिक रूप से बीमार है, यथातथ्य (Ipso-facto)

आपराधिक दायित्व से मुक्त नहीं हो जाता। विधिक चित्त-विकृतता एवं मेडिकल चित्त-विकृतता में अंतर होता है। न्यायालयों को विधिक चित्त-विकृतता को ही देखना होता है ना कि मेडिकल चित्त-विकृतता को। भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 105 के अंतर्गत पागलपन को सिद्ध करने का भार अभियुक्त पर होता है तथा यह भार ऐसा नहीं है जैसा कि अभियोजन पक्ष के ऊपर आरोप सिद्ध करने का भार होता है। अभियुक्त पर सबूत का यह भार सिविल कार्यवाही में वादी अथवा प्रतिवादी पर सबूत के भार से अधिक नहीं होता है। (देखें - दहिया भाई बनाम गुजरात राज्य एआईआर 1964 एससी 1563)। चित्त-विकृतता से जुडे मामलों से निपटने में, उन मामलों के बीच अंतर किया जाना चाहिए, जिनमें कमोबेश पागलपन साबित हो चूका है तथा प्रश्न मात्र गैर जिम्मेदारी की मात्रा का है और ऐसे मामले जिनमें चित्त-विकृतता किसी ऐसे व्यक्ति, जो हर प्रकार से समझदार प्रतीत हो रहा है, के संबंध में सिद्ध करने का प्रयास किया जाता है। सभी मामलों में, जहां पर पूर्व के पागलपन का तथ्य प्रमाणित तथा स्वीकृत किया गया है, कुछ बातों का ध्यान रखना आवश्यक है, जिन्हें मैन (Mayne) द्वारा निम्न प्रकार संक्षेपित किया गया हैः

> "क्या कार्य के लिए विचार-विमर्श और तैयारी की गई थी; क्या यह इस तरह से किया गया था जिससे छिपाने की इच्छा दिखाई दे; क्या अपराध के बाद, अपराधी अपराध बोध से ग्रस्त हुआ और गिरफ्तारी से बचने के प्रयास किए,

क्या गिरफ्तारी के बाद उसने झूठे बहाने बनाये और गलत बयान दिए। इस प्रकार के सभी तथ्य परीक्षण पर प्रभाव डालने वाले हैं, जो ब्रैमवाल, ने ऐसे मामले में जूरी के सामने प्रस्तुत किये थे: अगर कैदी के पास कोई पुलिसकर्मी होता तो क्या उसने यह कृत्य किया होता। यह याद रखना चाहिए कि यह परीक्षण उन मामलों के लिए अच्छे हैं जिनमें पिछला पागलपन कमोबेश स्थापित हो चुका है। यह परीक्षण जिन्हें मैन (Mayne) द्वारा "अनुमानित पागलपन" कहा गया है, सदैव विश्वसनीय नहीं होते हैं।"

6. भा.द.सं. की धारा 84 के अंतर्गत किसी व्यक्ति को मानसिक अस्वस्थत्ता के आधार पर कार्य करने के दायित्व से तब मुक्त कर दिया जाता है यदि वह कार्य करते समय (क) कार्य करने की प्रकृति को जानने में असमर्थ है, या (ख) कि वह जो कर रहा है वह या तो गलत है या विधि विरूद्ध है। अभियुक्त को न केवल तब संरक्षित किया जाता है जब पागलपन के कारण वह कार्य की प्रकृति को जानने में असमर्थ था बल्कि तब भी सरंक्षित किया जाता है जब वह कार्य की प्रकृति को तो जानता था परंतु वह यह नहीं जानता था कि या तो वह कार्य गलत था या विधि विरूद्ध था। यद्यपि उस दशा में वह संरक्षित नहीं है यदि वह जानता था कि वह जो कर रहा था वह गलत था, भले ही वह यह नहीं जानता था कि किया गया कार्य विधि के विपरित था और भले ही वह यह भी जानता था

कि वह जो कर रहा था वह विधि विरूद्ध था, भले ही वह यह नहीं जानता था कि यह गलत था। चित्त विकृतता को सिद्ध करने का भार अभियुक्त पर है परंतु जहां पर अन्वेषण के दौरान चित्त विकृतता का कोई पूर्व का इतिहास सामने आता है तो अन्वेषणकर्ता का यह दायित्व है कि वह उस साक्ष्य को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करे। यदि ऐसा नहीं किया जाता तो यह अभियोजन मामले में एक गंभीर दुर्बलता को जन्म देता है तथा इस संदेह का लाभ अभियुक्त को जाता है। यद्यपि अपराध के कुछ समय पहले के अभियुक्त के आचरण और उस समय या उसके तुरंत बाद के आचरण के प्रमाण, उसकी मानसिक स्थिति व अन्य सुसंगत कारकों की साक्ष्य पेश करके इस भार को उन्मोचित्त किया जाना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति के संबंध में धारणा की जाती है कि वह अपने कार्य के स्वाभाविक परिणाम को जानता है। अभियोजन पक्ष को इन तथ्यों को स्थापित नहीं करना है।

7. चार प्रकार के व्यक्ति होते हैं, जिन्हें नॉन कम्पोज मेंटिस (स्वस्थ दिमाग का नहीं) कहा जा सकता है अर्थात (i) बेवकूफ (ii) बीमारी से पीडित होने पर मानसिक अस्वस्थता (iii) पागल या विक्षिप्त व्यक्ति (iv) जो नशे में हो। मूर्ख वह है जिसकी स्मृति जन्म से ही, निरंतर दुर्बलता के कारण, स्पष्ट अंतराल के बिना, ठीक नहीं है; तथा उन्हें बेवकूफ कहा जाता है जो बीस की गिनती नहीं कर सकते, या सप्ताह के दिनों को नहीं बता सकते, जो अपने माता पिता को नहीं जानते, या ऐसा ही कुछ (देखें आर्कबोल्ड की क्रिमिनल प्लीडिंग्स, एविडेन्स एंड प्रैक्टिस, 35 वां संस्करण

पेज 31-32, रस्सेल ऑन क्राइम्स एंड मिसड़ेमेयनोर्स 12 वां संस्करण भाग 1, पेज 103 व 105; 1 हाला की प्लीज ऑफ द ग्रोन 134) बीमारी के कारण नॉन कम्पोज मेंटीस बने व्यक्ति को आपराधिक मामले में उसके विकार के प्रभावों में किये गये कृत्य से छूट दी जाती है। (देखें 1 हेल पीसी 30) एक पागल व्यक्ति वह है जो केवल कुछ निश्चित अवधियों और उलटफेरों में, तर्क के अंतराल पर मानसिक विकार से पीडित होता है। (देखें रसेल, 12 वां संस्करण, वॉल्यूम I पेज 103) पागलपन को अर्जित पागलपन और मूर्खता को प्राकृतिक पागलपन कहा जाता है।

8. धारा 84 दाण्डिक विधि के मौलिक सिद्धांत का प्रतीक है अर्थात (actus non reum facit nisi mens sit rea) (कोई कार्य तब तक अपराध नहीं बनता जब तक कि वह दोषपूर्ण आशय से नहीं किया गया हो) किसी अपराध के गठन हेतु आशय एवं कार्य का मेल होना आवश्यक है; परंतु पागल व्यक्तियों के मामले में उन पर दोषारोपण नहीं किया जाता, क्योंकि उनकी कोई स्वतंत्र ईच्छा नहीं होती है। (Furios is nulla voluntas est)

9. धारा यह उपबंध करती है कि इस धारा का लाभ तभी मिलता है जब यह सिद्ध हो जाये कि अभियुक्त मानसिक रोग के कारण ऐसे तर्क दोष से ग्रसित था, जिसके चलते उसे कार्य की प्रकृति व गुणवत्ता की जानकारी नहीं थी, या यह भी कि यदि वह इसे नहीं जानता था, यह गलत था या विधि के विपरित था। यह तय करने के लिये, कि इस धारा का लाभ दिया

जाये अथवा नहीं, महत्वपूर्ण समय वह होता है जब अपराध कारित किया गया। निष्कर्ष पर पहूंचने के लिये सुसंगत परिस्थितियों को विचार में लिया जाना चाहिए, मात्र अपराध के चरित्र के आधार पर दिये गये तर्कों को आधार बनाकर पागलपन को प्रतिरक्षा के रूप में स्वीकार करना खतरनाक होगा। आपराधिक दायित्व से छूट केवल ऐसी चित्त विकृतता के आधार पर दी जा सकती है, जो मन की संज्ञानात्मक क्षमताओं को क्षीण कर देती है। स्टीफन ने इंग्लैंड के आपराधिक कानून का इतिहास, वॉल्यूम II, पृष्ठ 166 में यह लिखा है कि यदि कोई व्यक्ति किसी सोये हुये व्यक्ति का सिर इसलिये काट देता है क्योंकि जागने पर उसे इसकी तलाश करते हुये देखना बहुत मजेदार होगा। जाहिर तौर पर यह एक ऐसा मामला होगा जहां अपराध करने वाला व्यक्ति अपने कृत्य के शारीरिक प्रभावों को जानने में असमर्थ है। कानून कार्य की प्रकृति को समझने के अलावा कुछ भी नहीं मानता है तथा यह उपधारित करता है कि जहां किसी व्यक्ति का मस्तिष्क या उसकी निर्णय लेने की क्षमताएं यह समझने के लिये पर्याप्त रूप से कमजोर हैं कि वह क्या कर रहा है, यह माना जाना चाहिए कि वह हमेशा अपने द्वारा किये गये कार्यों के परिणाम का इरादा रखता है। किसी अपराध, चाहे वह कितना भी क्रूर क्यों ना हो, के लिये उद्देश्य का अभाव मात्र विधिक पागलपन के अभिवाक् एवं सबूतों के अभाव में मामले को इस धारा के अंतर्गत नहीं लाता। इस न्यायालय द्वारा शेराल वल्ली मोहम्मद बनाम महाराष्ट्र राज्य (1972 सीआर.एलजे) 1523 (एससी) मामले में यह

अभिनिर्धारित किया गया है कि मात्र इस तथ्य कि अभियुक्त द्वारा अपनी पत्नी व बच्चे की हत्या करने का उद्देश्य प्रमाणित नहीं किया गया अथवा यह तथ्य, कि उसने टूटे हुये दरवाजे से भागने का कोई प्रयास नहीं किया, से यह इंगित नहीं होता है कि वह पागल था अथवा उसका अपराध करने का आपराधिक आशय नहीं था। मात्र मन की असामान्यता या आंशिक भ्रम, अप्रतिरोध्य आवेग या एक मनोरोगी का बाध्यकारी व्यवहार धारा 84 के अंतर्गत कोई संरक्षा प्रदान नहीं करता है क्योंकि उस धारा में दी गई विधि अभी भी इंग्लैंड के उन्नीसवीं शताब्दी के समयातीत हो गये नोटन के नियमों पर आधारित है। धारा 84 के प्रावधान मूलतः वही हैं जो हाउस ऑफ लार्डस द्वारा एम. नोटन (1843) 4 एसटी. टीपी.एनएस. 847 मामले में न्यायाधीशें से पूछे गये प्रश्नों के उत्तर स्वरूप उनके द्वारा दिये गये हैं। घटना के समय अभियुक्त की मानसिक स्थिति का पता लगाने के लिये घटना के पूर्व, घटना के समय व उसके पश्चात् का व्यवहार सुसंगत हो सकता है परंतु अधिक समय पुराना व्यवहार नहीं। अपराध करते समय अपराधी के मस्तिष्क की सटीक स्थिति को सिद्ध करना मुश्किल है, परंतु इसके कुछ संकेत अक्सर अपराध करते समय या अपराध करने के तुरंत पश्चात् अपराधी के आचरण में मिलते हैं। पागल व्यक्ति का स्पष्ट अंतराल न केवल विकार के हिंसक लक्षणों की समाप्ति है, वरन मन की क्षमताओं की पर्याप्त बहाली है, जो व्यक्ति को कार्य का निर्णय लेने में सक्षम बनाती है; परंतु जरूरी रूप से इसका अर्थ मानसिक क्षमताओं की उनकी मूल स्थिति

में पूर्ण या सटीक बहाली होना नहीं है। इसलिए, यदि ऐसी कोई बहाली है तो संबंधित व्यक्ति ऐसे कारणों स्मृति और निर्णय के साथ कार्य कर सकता है, कि यह एक वैध कार्य बन जाये, परंतु मात्र विकार के गंभीर लक्षणों की समाप्ति पर्याप्त नहीं है।

10. लागू किये जाने वाला मानक यह है कि क्या युक्तियुक्त व्यक्तियों द्वारा अपनाये गये सामान्य मानकों के अनुसार, कार्य सही था या गलत। मात्र यह तथ्य कि अभियुक्त अंहकारी है, अजीब है व चिडचिडा है व उसका दिमाग बिल्कुल ठीक नहीं है या यह कि वह जिन शारीरिक व मानसिक बीमारियों से पीडित था उसने उसकी बुद्धि को कमजोर कर दिया है और उसकी भावनाओं व इच्छाशक्ति को प्रभावित किया है, उसने अतीत में कुछ असामान्य कार्य किया था, उसमें थोडे थोडे अंतराल पर बार-बार दौरे पडने की संभावना थी या उसे मिर्गी के दोरे आते हैं परंतु उसके व्यवहार में कुछ भी असामान्य नहीं था, यह कि उसका व्यवहार अजीब था, इस धारा के उपबंधों को आकर्षित करने के लिये पर्याप्त नहीं हो सकता है।

11. विचारण न्यायालय एवं उच्च न्यायालय ने मामले के तथ्यों के आधार पर यह सही अभिनिर्धारित किया है कि धारा 84 भा.द.सं. लागू नहीं होती है।

12. यह प्रार्थना की गई है कि अभियुक्त अपीलार्थी दिनांक 23.01.1996 से अभिरक्षा में है तथा दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा

339 (संक्षेप में दं.प्र.सं.) लागू होती है हम उस संबंध में कोई राय व्यक्त करना उचित नहीं पाते।

13. अपील खारिज की जाती है।

आर.पी. अपील खारिज की गई।

[यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल **'सुवास'** की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी **नायपाल सिंह (आर.जे.एस.)** द्वारा किया गया है।]

अस्वीकरण : यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।